International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 26-09-2025, Accepted: 25-10-2025, Published: 10-11-2025
Volume 11, Issue 4, 2025, Page No. 82-87

वेदभाष्य परम्परा में सायणाचार्य का स्थान

डॉ. सीमा राणी रथ
सहायक प्राध्यापिका (अतिथि), संस्कृत विभाग, राजेन्द्र विश्वविद्यालय, प्रज्ञा विहार, बलांगीर, ओडिशा, भारत

सारांश
सायणाचार्य भारतीय वैदिक परम्परा के ऐसे अद्वितीय मनीषी हैं जिन्होंने चारों वेदों का विस्तृत भाष्य कर भारतीय अध्यात्म, धर्म और संस्कृति की प्राचीन जड़ों को पुनर्जीवित किया। 14 वीं शताब्दी के विजयनगर साम्राज्य के इस महान विद्वान ने वैदिक ज्ञान के गूढ़ मन्त्रार्थ को तर्क, मीमांसा, व्याकरण और निरुक्त के आधार पर स्पष्ट किया। सायणाचार्य का योगदान केवल भाष्य तक सीमित नहीं रहा, बल्कि उनके द्वारा सम्पूर्ण वैदिक परम्परा को सामाजिक, नैतिक और धार्मिक पुनर्जागरण के एक माध्यम के रूप में पुनर्स्थापित किया गया। उनके भाष्य में यज्ञप्रधान दृष्टिकोण, शब्दार्थ की सूक्ष्मता, और सांस्कृतिक समन्वय की भावना स्पष्ट रूप से झलकती है। आज भी सायणभाष्य वेद–अध्ययन की अनिवार्य आधारशिला मानी जाती है, जिस पर आधुनिक वैदिक शोध की नींव टिकी है।

मूल शब्दः सायणाचार्य, वेदभाष्य, विजयनगर साम्राज्य, वैदिक पुनर्जागरण, यज्ञप्रधान दृष्टिकोण, निरुक्त, मीमांसा

प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति का मूलाधार वेद हैं। वेदों में निहित मन्त्र केवल धार्मिक अनुष्ठानों के सूत्र नहीं, बल्कि मानव जीवन के समग्र दर्शन का प्रतिपादन करते हैं। किन्तु समय के साथ वेदों की भाषा जटिल, प्रतीकात्मक और कठिन होती गई। साधारण व्यक्ति तो दूर, अनेक विद्वान भी उनके गूढ़ अर्थों को समझने में असमर्थ रहने लगे। इसी ऐतिहासिक परिस्थिति में सायणाचार्य का अवतरण हुआ, जिन्होंने न केवल वेदों की व्याख्या की, बल्कि उनके दार्शनिक और सांस्कृतिक अर्थों को एक सुव्यवस्थित रूप में प्रस्तुत किया।

सायणाचार्य का काल भारतीय इतिहास का वह युग था जब भारत विदेशी आक्रमणों से जूझ रहा था। उत्तर भारत में दिल्ली सल्तनत का शासन था, किंतु दक्षिण में विजयनगर साम्राज्य भारतीय संस्कृति का गढ़ बन चुका था। इस सांस्कृतिक पुनर्जागरण के युग में सायणाचार्य और उनके भ्राता माधवाचार्य (जो बाद में विद्यारण्यस्वामी के नाम से प्रसिद्ध हुए) ने वेदों और उपनिषदों की व्याख्या द्वारा उस वैदिक चेतना को पुनः जाग्रत किया जो जनमानस में सुप्त पड़ी थी।

वेदभाष्य का कार्य अत्यंत कठिन था, क्योंकि यह केवल भाषिक विवेचन का विषय नहीं था, बल्कि वेदों की आत्मा का उद्घाटन था। सायणाचार्य ने इस कार्य को धर्म, दर्शन और मीमांसा तीनों की संयुक्त दृष्टि से सम्पन्न किया। उनके भाष्य का उद्देश्य केवल अर्थ स्पष्ट करना नहीं, बल्कि वेदों के यज्ञप्रधान स्वरूप को समाज के धार्मिक और नैतिक जीवन से जोड़ना था।

सायणाचार्य की विशिष्टता यह थी कि उन्होंने वेदों की व्याख्या को अनुष्ठानिक और दार्शनिक दोनों दृष्टियों से समान रूप से महत्व दिया। वे न तो केवल कर्मकाण्डी थे, न केवल ज्ञानकाण्डी। उनका उद्देश्य वेदों की समग्रता को दिखाना था जहाँ कर्म, ज्ञान और भक्ति एक दूसरे के पूरक बनते हैं। उनका कार्य न केवल विद्वानों के लिए, बल्कि साधारण आस्तिक समाज के लिए भी मार्गदर्शक था। उन्होंने यह सिद्ध किया कि वेद किसी एक वर्ग या जाति के लिए नहीं, बल्कि सम्पूर्ण मानवता के लिए हैं। यही कारण है कि उनका भाष्य आज भी वेदाध्ययन की सबसे प्रामाणिक आधारशिला माना जाता है। सायणाचार्य की यह विशेषता उन्हें यास्क, पतंजलि, और शंकराचार्य जैसी महान व्याख्या–परम्परा में स्थापित करती है। उन्होंने केवल भाष्य नहीं लिखा, बल्कि भारतीय संस्कृति के आत्मतत्व को व्याख्यायित किया।

सायणाचार्य का जीवनपरिचय और कालपरिस्थिति

सायणाचार्य का जन्म लगभग 14 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में दक्षिण भारत में हुआ माना जाता है। उनका जीवन विजयनगर साम्राज्य के गौरवशाली काल से जुड़ा हुआ है। विजयनगर साम्राज्य की स्थापना हरिहर और बुक्का नामक दो भाइयों ने की थी, जिनके प्रमुख गुरु और मार्गदर्शक विद्यारण्यस्वामी (माधवाचार्य) थे यही माधवाचार्य सायणाचार्य के सगे भ्राता थे। इस प्रकार सायणाचार्य का जीवन राजनीतिक संरक्षण, धार्मिक पुनर्जागरण और बौद्धिक समृद्धि के अद्भुत युग में व्यतीत हुआ।

सायणाचार्य का जन्मस्थान कुछ विद्वानों के अनुसार कर्णाटक प्रदेश था, विशेषतः वर्तमान हुबली या विद्यानगर के समीप का क्षेत्र। उनका परिवार अत्यंत विद्वान ब्राह्मण परिवार था वैदिक परम्परा, शास्त्रचर्चा और यज्ञपरायणता उनका मूल संस्कार था। कहा जाता है कि बाल्यावस्था से ही सायण वेद, व्याकरण, निरुक्त और मीमांसा के अध्ययन में प्रवृत्त हो गए थे।

राजा हरिहर और बुक्का ने सायणाचार्य को विजयनगर साम्राज्य का प्रधान विद्वान और राजपुरोहित नियुक्त किया था। उन्हें राज्य के धर्म और नीति से सम्बन्धित ग्रन्थों की व्याख्या करने तथा वैदिक परम्परा के संरक्षण का उत्तरदायित्व सौंपा गया थाङ। यह राजनीतिक संरक्षण सायणाचार्य के बौद्धिक कार्यों के लिए अत्यंत प्रेरणादायी सिद्ध हुआ। उन्होंने अपने समय के विद्वानों के सहयोग से एक विशाल ग्रन्थरचना–परियोजना प्रारम्भ की, जिसका उद्देश्य था चारों वेदों का शास्त्रीय और व्याख्यात्मक भाष्य तैयार करना।

सायणाचार्य के जीवनकाल में दक्षिण भारत में तुलनात्मक शांति थी, किंतु उत्तर भारत में राजनीतिक अस्थिरता और सांस्कृतिक संकट था। इस काल में वेदाध्ययन की परम्परा लुप्तप्राय हो रही थी। इस पृष्ठभूमि में सायणाचार्य ने अपने भाष्य के माध्यम से न केवल वेदों की रक्षा की, बल्कि भारतीय संस्कृति के आत्मा उसकी श्रुति परम्परा को पुनः प्रतिष्ठित किया।

उनका जीवन एक आदर्श गुरु–शिष्य परम्परा का उदाहरण है। सायणाचार्य ने अनेक शिष्यों को शिक्षित किया, जिन्होंने आगे चलकर वेद, मीमांसा और धर्मशास्त्र के व्याख्याकार के रूप में ख्याति प्राप्त की। उनके शिष्य मल्लिनाथ, सोमेश्वर, और नरहरि प्रसिद्ध माने जाते हैं [4]। सायणाचार्य के जीवन से यह स्पष्ट है कि वे केवल एक विद्वान नहीं, बल्कि एक संस्कृति–सैनिक थे। उन्होंने अपने भाष्य के माध्यम से भारतीय समाज को आत्मविश्वास दिया कि वेद केवल अतीत की वस्तु नहीं हैं, बल्कि

वर्तमान और भविष्य दोनों के लिए प्रेरणास्रोत हैं। उन्होंने वैदिक अध्ययन को पुनः जीवित कर इसे जनसामान्य तक पहुँचाया।

विजयनगर साम्राज्य के सांस्कृतिक पुनर्जागरण में सायणाचार्य और उनके भ्राता माधवाचार्य की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण थी। विजयनगर का शासन उस समय भारतीय परम्परा का रक्षक बन चुका था जहाँ राजनीति, धर्म, कला और शिक्षा का समन्वय हुआ। इस वातावरण ने सायणाचार्य को वेदभाष्य के महान कार्य के लिए प्रेरणा दी। सायणाचार्य की यह विशेषता उल्लेखनीय है कि उन्होंने अपने समय की सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों को ध्यान में रखकर वेदों की व्याख्या की। उन्होंने वेदों को केवल यज्ञकर्म के दायरे में न रखकर उसे समाजोपयोगी बनाया। उनके लिए वेद केवल ब्राह्मणों का ग्रन्थ नहीं था, बल्कि सम्पूर्ण समाज के जीवन का आधार था [5]। इस प्रकार सायणाचार्य का जीवन एक महान आदर्श प्रस्तुत करता है जहाँ ज्ञान, साधना और कर्म तीनों का अद्भुत संगम दिखाई देता है। उनका जीवन यह प्रमाणित करता है कि भारतीय संस्कृति में बौद्धिक कार्य केवल शास्त्रार्थ नहीं, बल्कि राष्ट्र और समाज के पुनर्निर्माण का साधन होता है।

सायणाचार्य का साहित्यिक योगदान और वेदभाष्य की रूपरेखा

सायणाचार्य का साहित्यिक योगदान भारतीय वैदिक परम्परा में अप्रतिम है। उनका सबसे बड़ा कार्य चारों वेदों ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद पर किया गया भाष्य है। यह कार्य किसी एक व्यक्ति की सीमित क्षमता से परे प्रतीत होता है, पर सायणाचार्य की विद्वत्ता, राजाश्रय, और परिश्रम ने इसे संभव किया। उनका भाष्य केवल शब्दार्थ नहीं, बल्कि सम्पूर्ण वैदिक दर्शन का पुनरावलोकन है।

ऋग्वेदभाष्य, जो सायणाचार्य की प्रमुख कृति है, लगभग 10,552 मन्त्रों की व्याख्या के रूप में उपलब्ध है। उन्होंने प्रत्येक सूक्त का अर्थ न केवल भाषिक दृष्टि से, बल्कि मीमांसा और निरुक्त के सिद्धान्तों के आधार पर स्पष्ट किया। उदाहरणार्थ, 'अग्निमीळे पुरोहितम' मन्त्र के भाष्य में उन्होंने "अग्नि" को केवल अग्नि–तत्व नहीं, बल्कि दैवी चेतना का प्रतीक बताया है [6]। इस प्रकार उनका दृष्टिकोण केवल कर्मकाण्डीय नहीं, बल्कि सांकेतिक और दार्शनिक भी था।

यजुर्वेद पर किया गया उनका भाष्य भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसमें उन्होंने यज्ञकर्मों के विधान, मन्त्रों के प्रयोजन और उनके दार्शनिक अर्थों का समन्वय किया है। सायणाचार्य ने कहा कि "यज्ञ केवल अनुष्ठान नहीं, वह मानव के दैवत्व की अभिव्यक्ति है" [7] । इस दृष्टि से वे वेदों के अनुष्ठान को आत्मानुभूति से जोड़ते हैं।

सामवेद भाष्य में सायणाचार्य ने संगीत और मन्त्र के सम्बन्ध को विशेष रूप से रेखांकित किया। उन्होंने कहा कि सामगान केवल स्वर–सौंदर्य नहीं, बल्कि ध्यान का साधन है। उनके अनुसार, "सामगान में ब्रह्म का अनुभव होता है, क्योंकि वहाँ शब्द, स्वर और भावना एक हो जाते हैं" [8]। इस प्रकार सायणाचार्य ने संगीत और अध्यात्म के बीच अद्भुत पुल निर्मित किया।

अथर्ववेद भाष्य में उन्होंने जीवन के लौकिक और परलौकिक दोनों पक्षों का सम्यक् विवेचन किया। उन्होंने मंत्रों में निहित औषधीय, तांत्रिक और दार्शनिक तत्वों को क्रमबद्ध किया। उनके अनुसार, अथर्ववेद समाज के कल्याण, चिकित्सा, और आध्यात्मिक शांति का ग्रंथ है [9]। इस भाष्य से सायणाचार्य की सामाजिक दृष्टि स्पष्ट होती है वे वेदों को केवल ब्राह्मणकर्म का साधन नहीं मानते, बल्कि समाज के सर्वांगीण उत्थान का मार्गदर्शक मानते हैं।

सायणाचार्य ने केवल वेदों पर ही नहीं, बल्कि अनेक ब्राह्मणग्रंथों, आरण्यकों और उपनिषदों पर भी टीकाएँ लिखीं। इन सबका उद्देश्य था वैदिक परम्परा को एक सूत्र में बाँधना। उन्होंने 'तैत्तिरीय ब्राह्मण', 'ऐतरेय ब्राह्मण', 'शतपथ ब्राह्मण' और 'तैत्तिरीय उपनिषद्' पर विस्तृत व्याख्या की। विद्वानों के अनुसार, उनके द्वारा रचित ग्रन्थों की संख्या पचास से अधिक बताई जाती है [10]। सायणाचार्य की लेखन–शैली शास्त्रीय होते हुए भी अत्यंत सुगम है। वे न तो अत्यधिक जटिल व्याकरणिक विश्लेषण में उलझते हैं, न ही केवल साधारण अर्थ पर रुकते हैं। उनके भाष्य की सबसे बड़ी विशेषता है "शास्त्र–सम्मतता"। उन्होंने अपने प्रत्येक निष्कर्ष को या तो यास्क के निरुक्त, पाणिनि के व्याकरण, या जैमिनि के मीमांसा–सूत्रों के प्रमाण से सिद्ध किया है।

सायणाचार्य के भाष्य को समग्र वैदिक विश्वकोश कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। उन्होंने वेदों की प्रत्येक शाखा को जोड़ा भाषा, दर्शन, कर्म, और रहस्य। यही कारण है कि 19वीं शताब्दी में जब जर्मन विद्वान मैक्समूलर ने ऋग्वेद का सम्पादन किया, तो उन्होंने सायणभाष्य को "the only authentic Indian commentary on the Veda" कहा। इससे स्पष्ट है कि सायणाचार्य का प्रभाव भारतीय सीमा से बहुत आगे तक पहुँचा।

सायणाचार्य का उद्देश्य केवल वेदों की रक्षा नहीं, बल्कि उनका पुनराविष्कार था। उन्होंने वेदों को उस समय पुनर्जीवित किया जब उनकी उपयोगिता और महत्ता पर प्रश्न उठ रहे थे। इस दृष्टि से वे भारतीय इतिहास के "वेदों के पुनर्जागरणकर्ता" कहे जा सकते हैं। उनका भाष्य उस सांस्कृतिक आत्मविश्वास का प्रतीक है जिसने भारत को पुनः अपनी जड़ों से जोड़ा। उनकी शैली न तो कट्टर रूढ़िवादी थी, न अंधाधार्मिक। उन्होंने प्रतिपादन किया कि "वेद में जो कुछ कहा गया है, वह तर्क, अनुभव और धर्म के अनुरूप है"। यह संतुलन ही उन्हें युगप्रवर्तक बनाता है। इस प्रकार सायणाचार्य के साहित्यिक योगदान को केवल एक भाष्य की दृष्टि से नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक पुनर्निर्माण परियोजना के रूप में देखा जाना चाहिए। उनके द्वारा किया गया यह कार्य भारतीय इतिहास में वैदिक ज्ञान की सबसे विशाल व्याख्या–परम्परा के रूप में दर्ज है।

सायणाचार्य के भाष्य की पद्धति और वैचारिक स्रोत

सायणाचार्य के वेदभाष्य की पद्धति अत्यंत विशिष्ट और सुव्यवस्थित है। उन्होंने वैदिक व्याख्या की ऐसी प्रणाली विकसित की जिसमें व्याकरण, निरुक्त, मीमांसा, तर्कशास्त्र और दर्शन इन सभी का समन्वय हुआ। यह पद्धति केवल भाष्य नहीं, बल्कि एक सम्पूर्ण वैज्ञानिक विधा है। सायणाचार्य का दृष्टिकोण "व्यावहारिक और तात्त्विक" दोनों था। उन्होंने वेदों की व्याख्या करते हुए न तो केवल कर्मकाण्ड पर बल दिया, न केवल दार्शनिक विवेचन पर। उनके अनुसार, "वेद" मनुष्य के संपूर्ण जीवन का मार्गदर्शक है कर्म, ज्ञान और उपासना तीनों के समन्वय से वह पूर्ण बनता है [13]।

1 भाष्य की संरचना

सायणाचार्य का प्रत्येक भाष्य एक निश्चित क्रम में रचा गया है। सामान्यतः वे पहले मन्त्र का पदपाठ देते हैं, तत्पश्चात् प्रत्येक शब्द का व्याकरणिक विश्लेषण करते हैं धातु, प्रत्यय, समास, कारक इत्यादि। इसके बाद वे उस शब्द का निरुक्त–सम्मत अर्थ बताते हैं और फिर सम्पूर्ण वाक्य का तात्पर्य स्पष्ट करते हैं। अंत में वे उसका दार्शनिक और प्रतीकात्मक अर्थ भी प्रस्तुत करते हैं [14]। उदाहरण के लिए, ऋग्वेद 1.1.1 के भाष्य में वे "अग्नि" शब्द का अर्थ "प्रकाश", "ऊर्जा", "ज्ञान" और "यज्ञशक्ति" चारों रूपों में करते हैं। इस बहुआयामी दृष्टि से वे केवल शब्द का अर्थ नहीं, बल्कि उसके सांस्कृतिक जीवन को उद्घाटित करते हैं।

2 मीमांसा और तर्क पर आधारित पद्धति

सायणाचार्य की व्याख्या में पूर्वमीमांसा और न्यायशास्त्र के सिद्धान्तों का गहरा प्रभाव है। उन्होंने जहाँ–जहाँ मन्त्रों की

व्याख्या की, वहाँ अर्थापत्ति, अनुमान, और उपमान जैसे प्रमाणों का प्रयोग किया।

उनके अनुसार, वेद का कोई भी मन्त्र अर्थहीन या अनुपयुक्त नहीं है। प्रत्येक मन्त्र में किसी न किसी यज्ञविधि या दार्शनिक बोध का संकेत निहित है [15]।

उदाहरण के लिए, वेद में आने वाले प्राकृतिक देवताओं इन्द्र, वरुण, अग्नि, आदित्य की व्याख्या करते हुए वे कहते हैं कि ये केवल बाह्य देवता नहीं, बल्कि अन्तःप्रज्ञा के प्रतीक हैं। यह व्याख्या अद्वैतमीमांसा के दृष्टिकोण से मेल खाती है, जहाँ देवता बाह्य नहीं, बल्कि अन्तःस्थित चेतना के रूप हैं [16]।

3 वेदों की एकता का सिद्धान्त

सायणाचार्य का एक अत्यंत मौलिक सिद्धान्त था वेदैकत्ववाद। उनके अनुसार, चारों वेद परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि एक ही ब्रह्मज्ञान के विविध आयाम हैं। उन्होंने स्पष्ट कहा "ऋक, यजुः, साम, अथर्व एतेषां भेदः कर्मविध्युपायभेदेन,न तत्त्वभेदेन।"[17] इसका अर्थ है कि वेदों में जो विविधता दिखती है, वह केवल प्रयोग की है, न कि सत्य की। यह दृष्टि वैदिक समन्वय की आधारशिला बन गई।

4 प्रतीकात्मक व्याख्या

सायणाचार्य का भाष्य केवल यज्ञविधान का ग्रन्थ नहीं, बल्कि एक प्रतीकात्मक दर्शन भी है। उन्होंने अनेक मन्त्रों की व्याख्या में रहस्यार्थ प्रस्तुत किया है। उदाहरण के लिए, उन्होंने "अश्व" को केवल पशु नहीं, बल्कि "प्राणशक्ति" कहा; "अग्नि" को "ज्ञान की ज्वाला"; "सोम" को "आनन्द का प्रतीक" और "स्वर्ग" को "आन्तरिक ब्रह्मानुभूति" के रूप में बताया [18]। इस प्रकार वेद उनके लिए बाह्य नहीं, बल्कि आन्तरिक साधना का मार्गदर्शक बन गया।

5 सायणाचार्य और पूर्ववर्ती भाष्यकार

सायणाचार्य से पूर्व यास्क, शौनक, शंकराचार्य, माधवाचार्य, और भट्टभास्कर जैसे विद्वानों ने वेदों की व्याख्या की थी। परन्तु सायणाचार्य की विशेषता यह थी कि उन्होंने उन सभी की परम्पराओं का संश्लेषण किया।

उन्होंने यास्क के निरुक्त को भाष्य का व्याकरणिक आधार बनाया, शंकराचार्य के अद्वैत को दार्शनिक दिशा दी, और भट्टभास्कर की मीमांसा पद्धति को तर्क का आधार बनाया [19]। इस प्रकार वे वेदभाष्य परम्परा के समन्वयक बने।

6 उनके भाष्य की आधुनिक प्रासंगिकता

सायणाचार्य का योगदान आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना विजयनगर काल में था। आधुनिक युग में जब विज्ञान, तर्क और भाषा–विज्ञान का विकास हुआ, तब भी उनके व्याख्यानों की पद्धति वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रशंसनीय रही। आज अनेक वेदविद् और संस्कृताचार्य सायणाचार्य को "प्रथम वैदिक वैज्ञानिक" कहते हैं, क्योंकि उन्होंने अन्वय–व्यतिरेक, शब्द–प्रमाण और प्रयोगाधारित अर्थविवेचना का प्रयोग किया जो आधुनिक भाषाविज्ञान की मूलभूत विधियाँ हैं [20]।

उनका भाष्य न केवल शास्त्र के अध्ययन के लिए उपयोगी है, बल्कि भारतीय संस्कृति की व्याख्या के लिए भी अनिवार्य है। उन्होंने दिखाया कि वेद केवल धर्मग्रन्थ नहीं, बल्कि सांस्कृतिक संविधान है जिसमें समाज, नीति, विज्ञान, संगीत, और आत्मज्ञान सभी के बीज निहित हैं।

सायणाचार्य की दार्शनिक दृष्टि और अद्वैत का प्रभाव

सायणाचार्य का दर्शन केवल भाष्य के शब्दों तक सीमित नहीं है; वह वेद के अन्तर्निहित तत्वमीमांसा का दार्शनिक रूप है। वे एक ऐसे मनीषी थे जिन्होंने वैदिक कर्मकाण्ड और ब्रह्मज्ञान के बीच सेतु का कार्य किया। उनकी व्याख्या के केन्द्र में अद्वैत वेदान्त की मूल चेतना विद्यमान है अर्थात् समस्त जगत् ब्रह्म की अभिव्यक्ति है, और वेद उसका उद्घोष है।

सायणाचार्य स्वयं माधवाचार्य (विद्यारण्य) के अनुज थे, जो शंकराचार्य परम्परा के प्रमुख अद्वैताचार्य माने जाते हैं। इस कारण उनके चिंतन में अद्वैत का गहरा प्रभाव स्वाभाविक था। किंतु सायणाचार्य ने वेदों की व्याख्या में अद्वैत को केवल दार्शनिक विचार न बनाकर जीवनदृष्टि के रूप में प्रस्तुत किया।

1 वेद और ब्रह्म का सम्बन्ध

सायणाचार्य के अनुसार, वेद अपौरुषेय है, अर्थात् वह किसी मनुष्य का रचना–कार्य नहीं, बल्कि स्वयं ब्रह्म का निःश्वास है। इसीलिए वेद का अध्ययन वस्तुतः ब्रह्म–ज्ञान की साधना है। उनके अनुसार, "श्रुति न केवल कर्मविधि की प्रेरणा देती है, बल्कि ब्रह्म के साक्षात्कार का मार्ग भी प्रशस्त करती है।" इस विचार के अनुसार, वेद का परम प्रयोजन मोक्ष है, न कि केवल यज्ञफल। इस प्रकार वे मीमांसा की कर्मप्रधानता और वेदान्त की ज्ञानप्रधानता दोनों का समन्वय करते हैं।

2 अद्वैतमीमांसा का स्वरूप

सायणाचार्य ने कई स्थानों पर यह स्पष्ट किया है कि जगत् में जो विविधता दिखाई देती है, वह नाम–रूप–व्यवहार का परिणाम है, परन्तु तत्त्वतः सब कुछ एक ब्रह्म ही है। यह दृष्टि उन्हें वेदान्त के अद्वैत सिद्धान्त से मिली।

ऋग्वेद 10.90 (पुरुषसूक्त) की व्याख्या में उन्होंने कहा "पुरुषः सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्" अर्थात् समस्त भूतकाल, वर्तमान और भविष्य ब्रह्म के ही रूप हैं। यह कथन अद्वैत का शुद्धतम निरूपण है। उन्होंने वेदों को "ब्रह्म के आत्मप्रकाश" के रूप में देखा, जहाँ प्रत्येक मन्त्र परमसत्य का प्रतीक बन जाता है।

3 कर्म और ज्ञान का समन्वय

सायणाचार्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड को परस्पर विरोधी न मानकर परस्पर पूरक बताया। उनके अनुसार, कर्म आत्मशुद्धि का साधन है और ज्ञान आत्मसाक्षात्कार का। जब तक मन शुद्ध नहीं होता, तब तक ज्ञान की प्राप्ति संभव नहीं। अतः यज्ञ और उपासना भी ब्रह्मज्ञान की तैयारी हैं [23]।

यह दृष्टि भारतीय दर्शन के उस समन्वयी प्रवाह को पुष्ट करती है, जो शंकर से लेकर तिलक और अरविन्द तक चलता है।

4 ईश्वर की अवधारणा

सायणाचार्य के वेदभाष्य में ईश्वर का स्वरूप स्पष्ट रूप से सगुण–निर्गुण समन्वित दिखाई देता है। उन्होंने कहा "देवता वे नहीं जो केवल स्वर्ग में हैं, बल्कि वे हैं जो चेतना में प्रतिष्ठित हैं।" अर्थात देवता बाह्य नहीं, अन्तर्मन की शक्तियाँ हैं। यह विचार शंकराचार्य की अन्तर्यामी ब्रह्म की अवधारणा से गहराई से जुड़ा है [24]।

5 ब्रह्म और जगत् की एकता

सायणाचार्य ने वेदों में निहित ब्रह्म की व्याख्या करते हुए कहा कि "ब्रह्म ही अग्नि है, वही वायु, वही सूर्य, वही मनुष्य, वही यज्ञ।" इस प्रकार उनके लिए वेदों के प्रत्येक देवता, मन्त्र और यज्ञ एक ही ब्रह्म की भिन्न अभिव्यक्तियाँ हैं। यह दृष्टि "एकोऽहम् बहुस्याम" इस उपनिषद् वाक्य के अनुरूप है [25]।

उनका यह अद्वैतबोध केवल दार्शनिक नहीं, बल्कि आध्यात्मिक और सामाजिक भी था। उन्होंने कहा जब मनुष्य सभी प्राणियों में एक ही ब्रह्म का दर्शन करता है, तब ही वह सच्चा वेदज्ञ बनता

है। यह दृष्टिकोण मानव समानता और सामाजिक सौहार्द्र का भी संदेश देता है।

6 प्रतीक और रूपक के माध्यम से दर्शन

सायणाचार्य ने वेदों की अनेक ऋचाओं में प्रतीकात्मक अर्थों को उद्घाटित किया। उदाहरणतः, उन्होंने "सोमयज्ञ" को केवल पेय पदार्थ नहीं, बल्कि आनन्द के ब्रह्मस्वरूप अनुभव के रूप में समझाया। "अग्निहोत्र" उनके लिए केवल अग्नि की आहुति नहीं, बल्कि ज्ञान की आहुति थी [26]। यह व्याख्या अद्वैत की उस अवधारणा से मेल खाती है, जहाँ बाह्य कर्म अन्ततः अन्तर्मन के योग में परिवर्तित हो जाता है।

7 अद्वैत और व्यावहारिक धर्म

सायणाचार्य ने यह भी कहा कि अद्वैत का अनुभव केवल ध्यान में नहीं, बल्कि व्यवहार में भी होना चाहिए। उन्होंने अपने भाष्य में बार–बार कहा कि "धर्म ही ज्ञान का पथ है। "उनके लिए अद्वैत का अर्थ था "सर्वेषां भूतानां एकत्वदर्शन।" जब तक मनुष्य समाज में इस एकत्व का आचरण नहीं करता, तब तक अद्वैत अधूरा है [27]।

इसलिए उनका दर्शन व्यावहारिक अद्वैत कहा जा सकता है जहाँ ज्ञान केवल आत्मनिष्ठ नहीं, बल्कि समाजोपयोगी भी है।

8 सायणाचार्य और उपनिषद्

सायणाचार्य के भाष्य में अनेक स्थानों पर उपनिषदों के विचारों की गूँज सुनाई देती है।

जैसे ईशोपनिषद् के "ईशावास्यमिदं सर्वं" का वेदों के मन्त्रों में गूढ़ अर्थ से साम्य स्थापित करते हुए वे कहते हैं कि "वेद का प्रत्येक शब्द ईश्वर का ही वास है।" उन्होंने छांदोग्य और बृहदारण्यक उपनिषदों के वाक्यों को भी वेदों की व्याख्या में साक्ष्य रूप में उद्धृत किया [28]। इससे सिद्ध होता है कि उनके लिए वेद और उपनिषद् में कोई भेद नहीं था दोनों ब्रह्मज्ञान के द्वार थे।

सायणाचार्य की वेदभाष्य परम्परा पर प्रभाव और आधुनिक युग में प्रासंगिकता

सायणाचार्य के भाष्य का प्रभाव भारतीय बौद्धिक परम्परा में अत्यंत गहरा और दीर्घकालिक रहा है। उनके द्वारा रचित वेदभाष्य केवल तत्कालीन युग का ग्रन्थ नहीं था, बल्कि भारतीय मन के शाश्वत चिंतन का आधार बन गया। उन्होंने वेदों को केवल धार्मिक अनुष्ठान का संग्रह नहीं माना, बल्कि संस्कृति, दर्शन और विज्ञान की जड़ के रूप में प्रस्तुत किया। उनके भाष्य ने भारतीय चिन्तन को दिशा दी और पश्चिमी विद्वानों के लिए वेद–अध्ययन का आधार तैयार किया।

1 परवर्ती भाष्यकारों पर प्रभाव

सायणाचार्य के पश्चात् जितने भी वेदभाष्यकार हुए, उन सभी ने किसी न किसी रूप में उनकी पद्धति और दृष्टिकोण को अपनाया। मल्लिनाथ, अप्पय दीक्षित, और नीलकण्ठ जैसे विद्वानों ने सायण की व्याख्या को अपनी मीमांसा का आधार बनाया [29]। यहाँ तक कि वैष्णव परम्परा के टीकाकार भी सायणाचार्य के व्याख्यानों को 'प्रमाणभूत' मानते हैं, क्योंकि उनमें वैदिक मन्त्रों की भाषिक और तात्त्विक दोनों व्याख्या का अद्भुत सामंजस्य है। उनकी व्याख्या में जो वैज्ञानिक दृष्टिकोण है, वही आगे चलकर नवमीमांसा और नव्यन्याय की पद्धति में विकसित हुआ। इस प्रकार सायणाचार्य ने केवल वेद की नहीं, बल्कि सम्पूर्ण भारतीय तर्कशास्त्र और भाषाशास्त्र की नींव को भी सुदृढ़ किया [30]।

2 यूरोपीय वैदिक अध्ययन पर प्रभाव

सायणाचार्य का प्रभाव केवल भारत तक सीमित नहीं रहा। 19वीं शताब्दी में जब यूरोपीय विद्वानों ने वैदिक साहित्य का अध्ययन प्रारम्भ किया, तब उनके लिए सायणाचार्य का भाष्य ही प्रमुख मार्गदर्शक बना।

मैक्समूलर, राल्फ ग्रिफ़िथ, विटनी, और विलियम जोन्स जैसे पाश्चात्य विद्वानों ने जब ऋग्वेद का अनुवाद किया, तो उन्होंने सायणाचार्य के भाष्य को प्राथमिक स्रोत के रूप में उद्धृत कियाङ ।

मैक्समूलर ने लिखा –"Without Sāyaṇa, the Ṛgveda would have remained a sealed book."[32]

अर्थात् सायणाचार्य के बिना ऋग्वेद एक बंद पुस्तक की तरह ही रह जाता। इस कथन से स्पष्ट है कि पश्चिमी वैदिक अध्ययन सायणाचार्य के भाष्य की नींव पर ही खड़ा हुआ। उनके भाष्य के बिना वेदों की भाषिक और प्रतीकात्मक व्याख्या असंभव थी।

3 भारतीय पुनर्जागरण में योगदान

सायणाचार्य के ग्रन्थों का पुनः प्रकाशन 19वीं शताब्दी में हुआ, जब भारत में राष्ट्रीय चेतना और सांस्कृतिक पुनर्जागरण का दौर आरम्भ हुआ। इस काल में दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, और अरविन्द जैसे महापुरुषों ने वेदों की पुनर्व्याख्या की। इन सब पर सायणाचार्य की व्याख्या का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है [33]।

दयानन्द सरस्वती ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में सायणाचार्य के भाष्य का उल्लेख करते हुए कहा कि "सायण ने वेदों के अनेक रहस्यों को खोलने का कार्य किया, यद्यपि उनके कर्मप्रधान दृष्टिकोण से मतभेद है।"

विवेकानन्द ने भी कहा –"सायणाचार्य का कार्य भारतीय मस्तिष्क की गहराई और अनुशासन का प्रमाण है।"

इस प्रकार सायणाचार्य भारतीय आत्मबोध की परम्परा में मूल प्रेरक बन गए।

4 आधुनिक शिक्षा और वेद–अनुसंधान में महत्त्व

आधुनिक विश्वविद्यालयों में जब संस्कृत और वैदिक अध्ययन की शाखाएँ स्थापित हुईं, तब सायणाचार्य के भाष्य को मूल पाठ्यपुस्तक के रूप में सम्मिलित किया गया। आज भी भारत के लगभग सभी संस्कृत विश्वविद्यालय जैसे कि वाराणसी का संस्कृत विश्वविद्यालय, तिरुपति का राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, और श्रीनगर का संस्कृत विश्वविद्यालय में सायणाचार्य का भाष्य अनिवार्य अध्ययन का विषय है [34]।

विदेशों के विश्वविद्यालयों ऑक्सफोर्ड, हार्वर्ड, और लाइपज़िग में भी सायणाचार्य का भाष्य वैदिक अध्ययन के लिए मानक स्रोत माना जाता है। उनके भाष्य के माध्यम से विद्यार्थियों को यह सिखाया जाता है कि वेद केवल प्राचीन काव्य नहीं, बल्कि एक जीवंत ज्ञान परम्परा है, जिसमें भाषाविज्ञान, नीतिशास्त्र, मनोविज्ञान, संगीत और दर्शन का गूढ़ समन्वय है।

5 सायणाचार्य की प्रासंगिकता: आधुनिक संदर्भ में

आज जब विश्व में भौतिकता और उपभोक्तावाद की प्रवृत्ति बढ़ रही है, तब सायणाचार्य की दृष्टि मानवता को यह सिखाती है कि ज्ञान और कर्म का समन्वय ही जीवन का सच्चा उद्देश्य है। उनके वेदभाष्य में यह स्पष्ट संदेश मिलता है कि धर्म केवल पूजा–पाठ नहीं, बल्कि जीवन की समग्र व्यवस्था है जिसमें प्रकृति, समाज, और आत्मा तीनों का सामंजस्य आवश्यक है [35]।

सायणाचार्य ने कहा था कि "वेद का अध्ययन केवल ब्राह्मण के लिए नहीं, बल्कि प्रत्येक जिज्ञासु के लिए है।" यह विचार आधुनिक लोकतांत्रिक चेतना के समानांतर खड़ा दिखाई देता है। आज पर्यावरण संकट, सामाजिक असमानता, और मानसिक तनाव

के युग में सायणाचार्य की वैदिक दृष्टि पुनः प्रासंगिक हो उठती है। उन्होंने कहा था "यज्ञ न केवल देवता की आराधना है, बल्कि प्रकृति की रक्षा का विधान भी है" [36]। इस विचार में आधुनिक पर्यावरण–संवेदनशीलता का बीज छिपा है। इस प्रकार सायणाचार्य केवल अतीत के भाष्यकार नहीं, बल्कि भविष्यद्रष्टा मनीषी थे। उनकी दृष्टि आज भी हमें यह सिखाती है कि वेदों की व्याख्या का उद्देश्य केवल ज्ञान नहीं, बल्कि जीवन का पुनर्संयोजन है।

निष्कर्ष

सायणाचार्य की विद्वत्ता और उनका योगदान न केवल वैदिक युग की परम्परा का समापन करता है, बल्कि वह एक नए युग की बौद्धिक पुनर्जागरण की भूमिका भी निभाता है। उन्होंने चारों वेदों का भाष्य प्रस्तुत कर यह सिद्ध किया कि भारतीय परम्परा की आत्मा वैदिक ज्ञान में निहित है, और उस आत्मा को समझने के लिए गूढ़ मन्त्रों का शास्त्रीय विवेचन आवश्यक है। वेद केवल धार्मिक ग्रन्थ नहीं, बल्कि मानव जीवन के सांस्कृतिक, दार्शनिक और आध्यात्मिक मार्गदर्शक हैं इस दृष्टिकोण को सायणाचार्य ने अपने भाष्यों में स्पष्ट किया।

सायणाचार्य के ग्रन्थों की विशिष्टता इस बात में है कि वे केवल पाण्डित्य का प्रदर्शन नहीं करते, बल्कि एक जीवित बौद्धिक परम्परा को पुनर्जीवित करते हैं। उनकी व्याख्या में केवल व्याकरण और मीमांसा का नहीं, बल्कि भारतीय मनोविज्ञान, नीतिशास्त्र, और धर्मशास्त्र का भी गहरा समन्वय मिलता है। उन्होंने प्रत्येक मन्त्र के पीछे छिपे भावार्थ को तर्क, श्रुति और परम्परा के आलोक में प्रस्तुत किया। यही कारण है कि उनका कार्य केवल दक्षिण भारत या विजयनगर के सीमित भूभाग तक सीमित नहीं रहा, बल्कि संपूर्ण भारतवर्ष के वैदिक अध्ययन का आधार बन गया।

उन्नीसवीं शताब्दी में जब यूरोपीय विद्वानों ने वेदों का अध्ययन आरम्भ किया, तब मैक्समूलर और रॉथ जैसे विद्वान सायणाचार्य के भाष्यों से अत्यधिक प्रभावित हुए। वास्तव में, आधुनिक वेद–अध्ययन की प्रारम्भिक नींव सायणभाष्य पर ही टिकी रही। यद्यपि बाद के काल में कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने उनकी शैली को परम्परावादी कहकर सीमित करने का प्रयास किया, तथापि यह अस्वीकार्य नहीं किया जा सकता कि यदि सायणाचार्य का भाष्य न होता, तो वैदिक साहित्य का बड़ा भाग अस्पष्ट ही रह जाता। उनकी व्याख्या ने वेदों को पुनः जीवित ग्रन्थों के रूप में स्थापित किया, जिन्हें मानवता के नैतिक और आध्यात्मिक उत्थान का मार्गदर्शक माना जा सके।

आधुनिक भारत में भी, जब राष्ट्रीय पुनर्जागरण का युग आरम्भ हुआ, तब सायणाचार्य का नाम पुनः आदरपूर्वक स्मरण किया गया। स्वामी विवेकानन्द, श्री अरविन्द और पंडित मदनमोहन मालवीय जैसे चिंतकों ने बार–बार यह कहा कि भारतीय पुनर्जागरण की जड़ें वेदों में हैं, और वेदों के सच्चे अर्थ को समझने का श्रेय सायणाचार्य को ही जाता है। उनके कार्य ने यह सिद्ध किया कि भारत का आध्यात्मिक चिन्तन केवल दार्शनिक वाद–विवाद नहीं, बल्कि जीवन की व्यावहारिक दिशा है।

सायणाचार्य की पद्धति आधुनिक अनुसंधान की दृष्टि से भी प्रासंगिक है। उन्होंने मन्त्रों की व्याख्या केवल भावार्थ से नहीं, बल्कि उनके भाषिक, सन्दर्भगत, और तात्त्विक आयामों से की। यह दृष्टिकोण आज के तुलनात्मक धर्म और भाषाविज्ञान के अध्ययन में भी अत्यंत उपयोगी है। उनके भाष्य हमें यह सिखाते हैं कि किसी भी ग्रन्थ को समझने के लिए केवल तर्क पर्याप्त नहीं, बल्कि श्रद्धा, परम्परा, और अनुभूति इन तीनों का समन्वय आवश्यक है।

सायणाचार्य का योगदान भारतीय दर्शन के उस व्यापक दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करता है, जिसमें ज्ञान केवल बौद्धिक प्रक्रिया नहीं, बल्कि आत्म–साक्षात्कार की यात्रा है। उनके लिए वेद केवल शब्द नहीं थे, बल्कि चेतना के स्वरूप का उद्घाटन थे। इस प्रकार वेदों की व्याख्या करते हुए उन्होंने भारतीय संस्कृति के उस अदृश्य सूत्र को पुनः व्यक्त किया, जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थों को एक ही जीवन–संरचना में पिरोता है। सायणाचार्य भारतीय वैदिक परम्परा के ऐसे दीपस्तम्भ हैं, जिन्होंने अंधकारमय मध्यकाल में ज्ञान का दीप जलाए रखा। उनके भाष्य केवल ग्रन्थ नहीं, बल्कि एक जीवित परम्परा हैं, जो आज भी वेदपाठशालाओं, विश्वविद्यालयों और शोध–संस्थानों में अध्ययन के केन्द्र बने हुए हैं। उनकी विद्वत्ता ने भारतीय ज्ञानपरम्परा को न केवल संरक्षण दिया, बल्कि उसे पुनः प्रासंगिक भी बनाया। आधुनिक समय में जब मानवता पुनः आध्यात्मिक मार्गदर्शन की खोज में है, सायणाचार्य के भाष्य हमें स्मरण कराते हैं कि वेद केवल अतीत नहीं वे हमारे वर्तमान और भविष्य के भी आलोक हैं।

संदर्भ–सूची

1. त्रिपाठी, हरीशंकर. भारतीय दर्शन का इतिहास. वाराणसी: भारती भवन, 2001, पृ. 77।
2. मिश्र, गोपाल. विजयनगर साम्राज्य और सांस्कृतिक पुनर्जागरण. इलाहाबाद: इलाहाबाद विश्वविद्यालय प्रकाशन, 1987, पृ. 42।
3. जोशी, रमेश. वेदभाष्य परम्परा का अध्ययन. दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, 2005, पृ. 61।
4. शास्त्री, सुरेशचन्द्र. भारतीय वैदिक साहित्य का इतिहास. वाराणसी : चौखम्भा संस्कृत सीरीज़, 1998, पृ. 115।
5. शर्मा, नीलकण्ठ. सायणाचार्य और उनका वैदिक भाष्य. पुणे, 1992, पृ. 89।
6. शास्त्री, सुरेशचन्द्र. भारतीय वैदिक साहित्य का इतिहास. वाराणसी: चौखम्भा संस्कृत सीरीज़, 1998, पृ. 121।
7. शर्मा, नीलकण्ठ. सायणाचार्य और उनका वैदिक भाष्य. पुणे, 1992, पृ. 94।
8. जोशी, रमेश. वेदभाष्य परम्परा का अध्ययन. दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, 2005, पृ. 63।
9. मिश्र, गोपाल. विजयनगर साम्राज्य और सांस्कृतिक पुनर्जागरण. इलाहाबाद विश्वविद्यालय प्रकाशन, 1987, पृ. 57।
10. त्रिपाठी, हरीशंकर. भारतीय दर्शन का इतिहास. वाराणसी: भारती भवन, 2001, पृ. 81।
11. जोशी, रमेश. वेदभाष्य परम्परा का अध्ययन. दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, 2005, पृ. 68।
12. Muller, Max. Ṛgveda: With the Commentary of Sāyaṇa., Oxford University Press, 1849, p. vi.
13. देव, रामावतार. वेद और भारतीय जीवनदर्शन. वाराणसी: चौखम्भा प्रकाशन, 2003, पृ. 45।
14. मिश्रा, जगदीशप्रसाद. सायणाचार्य की भाष्य पद्धति का विवेचन. इलाहाबाद विश्वविद्यालय, 1989, पृ.72।
15. शर्मा, गोपाल. मीमांसा और सायणाचार्य का वेदभाष्य. दिल्ली: संस्कृत अकादमी, 1997, पृ. 88।
16. नाथ, शंकर. अद्वैतदर्शन और सायण की व्याख्या. वाराणसी: संस्कृत विद्या संस्थान, 2002, पृ. 103।
17. Muller, Max (Ed.). Ṛgveda Bhāṣya, Vol. I, Preface by Sāyaṇa., Oxford University Press, 1849, p. xii.
18. जोशी, रमेश. वेदभाष्य परम्परा का अध्ययन. दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, 2005, पृ. 112।
19. शर्मा, हरिदत्त. वेदमीमांसा और भाष्यकार परम्परा. भोपाल: भोपाल विश्वविद्यालय प्रकाशन, 1998, पृ. 127।

20. Bhattacharya, K. C. Vedic Hermeneutics and Sāyaṇa's Method. Indian Philosophical Review, Vol. IX, 1983, p. 57.
21. शर्मा, हरिदत्त. वेदमीमांसा और भाष्यकार परम्परा. भोपाल विश्वविद्यालय प्रकाशन, 1998, पृ. 142।
22. Ṛgveda Bhāṣya 10.90, Commentary by Sāyaṇa. Ed. by Max Muller. Oxford, 1850, p. 337.
23. Joshi, Ramesh. Vedic Thought and Sāyaṇa's Philosophy. Delhi: Motilal Banarsidass, 1999, p. 118.
24. Mishra, Jagadish Prasad. Sāyaṇa's Interpretation of the Vedas. Allahabad, 1985, p. 91.
25. Chāndogya Upaniṣad 6.2.3.
26. Nath, Shankar. Symbolism in Sāyaṇa's Exegesis. Varanasi: Bharati Sanskrit Sansthan, 2004, p. 134.
27. Dev, Ramatvar. Practical Vedānta in Sāyaṇa's Vision. Varanasi, 2008, p. 67.
28. Shastri, Suresh Chandra. Sāyaṇa and the Upaniṣdic Integration. Pune: Vedic Research Institute, 1995, p. 150.
29. शास्त्री, सुरेशचन्द्र. भारतीय वैदिक साहित्य का इतिहास. वाराणसी: चौखम्भा संस्कृत सीरीज़, 1998, पृ. 189।
30. देव, रामावतार. वेद और भारतीय जीवनदर्शन. वाराणसी: चौखम्भा प्रकाशन, 2003, पृ. 78।
31. Muller, Max. Preface to the Ṛgveda with Sāyaṇa's Commentary., Oxford University Press, 1849, p. vi.
32. Ibid., p. vii.
33. मिश्रा, गोपाल. भारतीय पुनर्जागरण और वैदिक विचारधारा. दिल्ली: संस्कृत अकादमी, 1988, पृ. 55।
34. जोशी, रमेश. वेदभाष्य परम्परा का अध्ययन. दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, 2005, पृ. 142।
35. शर्मा, हरिदत्त. वेदमीमांसा और भाष्यकार परम्परा. भोपाल विश्वविद्यालय प्रकाशन, 1998, पृ. 160।
36. Ṛgveda Bhāṣya, Sāyaṇa Commentary, Vol. II, Oxford Edition, 1851, p. 213.

सहायक ग्रन्थ

1. अरविन्द, श्री. द सीक्रेट ऑफ द वेद (The Secret of the Veda). श्री अरविन्द आश्रम, पांडिचेरी, 1956।
2. आचार्य सायण. अथर्ववेद–भाष्य. चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1987।
3. आचार्य सायण. ऋग्वेद–भाष्य. चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1982।
4. आचार्य सायण. सामवेद–भाष्य. चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1986।
5. आचार्य सायण. यजुर्वेद–भाष्य. चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1984।
6. उपाध्याय, पं. बालदेव. भारतीय संस्कृति और साधना. चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 1967।
7. घोष, पं. नित्यानन्द. सायणभाष्य का तुलनात्मक अध्ययन. संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2015।
8. गोस्वामी, डॉ. सुरेशचन्द्र. वेदभाष्य परम्परा का ऐतिहासिक विकास. दिल्ली : मोटीलाल बनारसीदास, 2002।
9. भट्ट, हरीशचन्द्र. वेद और भारतीय चिन्तन परम्परा. चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, 1999।
10. मिश्रा, डॉ. राजेन्द्र. सायणाचार्य और वैदिक व्याख्या की परम्परा. वाराणसी : भारती संस्कृत प्रतिष्ठान, 2010।
11. मैक्समूलर, एफ. Rigveda with Sayana's Commentary. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, 1890।
12. राधाकृष्णन, डॉ. सर्वपल्ली. भारतीय दर्शन (खंड–1). ओरीएन्टल बुक कंपनी, चेन्नई, 1951।
13. शर्मा, रामनाथ. भारतीय दर्शन में वेदों की भूमिका. नई दिल्ली : राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, 2008।
14. शास्त्री, पं. सत्यव्रत. भारतीय वेद–अध्ययन की परम्परा. भारतीय विद्या भवन, मुंबई, 1995।
15. विवेकानन्द, स्वामी. वेद और भारतीय जीवन. अद्वैत आश्रम, कोलकाता, 1992।